International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 7 Issue 2, February 2017
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

ब्रिटिश शासन में देशी राज्यों के राजनीतिक व्यवस्था : एक अध्ययन

श्वेता कुमारी
शोधार्थी
स्नातकोत्तर, इतिहास विभाग
ल0 ना0 मिथिला, विश्वविद्यालय, दरभंगा

18वीं शाताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन के साथ–साथ बहुत से राज्यों की स्थापना हुई। 1757 में प्लासी के युद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार प्रारम्भ हुआ तथा भारत के राजनीतिक नक्शे में बहुत से परिवर्तन हुए। अंग्रेजों ने जिस तरह से भारत का अतिक्रमण किया और औपनिवेशिक सत्ता स्थापित करने के लिए जो नीतियाँ अपनाई उनके चलते इस उपमहाद्वीप के 25वें हिस्से पर[1] भारतीय राजाओं महाराजाओं का ही शासन कायम रहा। इन रियासतों में एक सामान्य बात यह थी कि ये सभी अंग्रेजी हुकूमत की संप्रभुता को मानती थी। अधिकतर रियासतों में निरंकुश स्वेच्छाचारी शासन का बोलबाला था।

भारत में रियासतों की संख्या 565 थी[2] और उनके अधीन 7,12,508 वर्ग मील[3] का क्षेत्रफल था। इस रियासतों में कुछ बड़े आकार की रियासतें थी जैसे – हैदराबाद, जिसकी जनसंख्या 1,40,00,0000 थी[4] और आय 8.5 करोड़ रूपये थी और कुछ रियासतें ऐसी थी जैसे – बिलबारी उसकी जनसंख्या केवल 27 थी और आय 8रू वर्षिक।[5]

1757 ई0 में प्लासी के युद्ध के बाद से कम्पनी एक राजनीतिक सत्ता के रूप में उभर कर आई तथा अपने आर्थिक हितों को ध्यान में रखते हुए देशी राज्यों से अपने संबंध को परिभाषित करना प्रारंभ कर दिया। 19वीं शताब्दी के मध्य तक अंग्रेजों की प्रभुसत्ता लगभग सभी भारतीय राज्यों पर स्थापित हो चुकी थी। अब तो ये रियासतें केवल उसी शक्ति का प्रयोग कर सकती थी जो उन्हें ब्रिटिश सरकार से प्राप्त हुई थी।[6]

पन्निकर के अनुसार भारतीय रियासतों को तीन विशिष्ट वर्गो में रखा जा सकता है : (1) ऐसे राज्य जिन्हें संधियों के द्वारा अपने राज्य में पूर्ण तथा अखण्ड प्रभुसत्ता का अधिकार है। (2) ऐसे राज्य जो संधिगत रियासत सरकार होने पर भी केवल ब्रिटिश सरकार की देख–रेख मे ही फौजदारी और नागरिक अधिकार का उपभोग करते है। और (3) ऐसे राज्य जिनके अधिकार दान–पत्र और सनद पर आधारित है।[7]

दूसरे भारतीय रियासतों में परिवर्तन भारतीय रियासतों के साथ अंग्रेजों के संबंध के बिषय में 'सर विलियम ली वार्नर' ने विशेष अध्ययन किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'दि नेटिव स्टेट्स ऑफ इन्डिया' में अंग्रेजों के भारतीय राज्यों के साथ संबंध को तीन भागों में विभक्त किया है :–

1. 1757 से 1813 तक अपने सुरक्षित घेरे में सीमित रहने की नीति (The Policy of Ring Fence)[8]
2. 1813 से 1858 तक अधीनस्थ पृथक्करण की नीति (The Policy of suborfinate isolation)[9]
3. 1858 से 1919 तक अधीनस्थ एकीकरण की नीति (The Policy of suborfinate Union)[10]

1740 से पूर्व कम्पनी एक व्यापारिक कम्पनी थी और उसकी कोई राजनीतिक आकांक्षाएँ नहीं थी। ये आकांक्षाएँ 1740 के पश्चात उत्पन्न हुई जब डुप्ले ने भारतीय रियासतों के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप करके भारत मे राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। अपने व्यापारिक

हितों के रक्षार्थ अंग्रेजों ने भी डुप्ले का अनुसरण किया और 1751 में अपने राजनीतिक सत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया। 1757 में अंग्रेजों ने प्लासी का युद्ध जीता और तत्पशचात बंगाल के नवाबों को अपनी कठपुतली बना लिया। इस तरह से अंग्रेजों ने भारतीय रियासतों के आन्तरिक मामला में हस्तक्षेप आरम्भ कर दिया और उन्हें अपने शक्ति के अधीन लाने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया।[11]

1757 से 1813 तक का समय जो 'सुरक्षित घेरे में सीमित रहने की नीति' कहलाती है में कम्पनी ने भारतीय रियासतों पर अपना प्रभुत्व जमाना प्रारम्भ कर दिया।[12] इस काल में कम्पनी ने अहस्तक्षेप एंव सीमित उत्तरदायित्व की नीति अपनाई। ऐसी नीति तत्कालीन आवश्यकताओं के कारण ही कर्नाटक के राज्य को मैसूर रियासत के विरूद्ध और अवध रियासत को मराठों के विरूद्ध बफर राज्यों के रूप में रखा गया। तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुसार और गवर्नर जनरल के वृत्तियों के अनुसार उस नीति में संसोधन किए गए जिसमें वारेन हेस्टिग्स रिंग फेस नीति है। बनारस के राजा चेत सिंह और अवध के बेगमों के प्रति उसकी माँगों और रूहेलों तथा रामपुर के फेजुल्ला खाँ के प्रति उसका व्यवहार उसके राज्यों में हस्तक्षेप के प्रमुख उदाहरण है। लार्ड कार्न वालिस ने टीपू सुल्तान पर आक्रमण कर उसका आधार राज्य छीन लिया और उसमें कोई बुराई नहीं समझी।[13] टीपू सुल्तान के विरूद्ध किया गया 1790 की त्रिपक्षीय संधि में यह बात प्रत्यक्ष रूप से लिखी गई कि एक–दूसरे की इच्छाओं और सुविधाओं की ओर पूरा ध्यान दिया जाएगा और निर्णय से पहले प्रत्येक पार्टी की स्वीकृति अवश्य ली जाएगी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक संधि ने राजा को पूर्ण रूप से जनता पर अपनी सत्ता रखने की गारंटी दी एक–दूसरे के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप न करने का विश्वास दिलाया।[14] इस प्रकार से मैसूर और निजाम भी सहायक संधि करके अंग्रेजों की प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली।

देशी रियासतों के प्रति रिंग फेस की नीति 1813 तक चली उसके बाद के समय में अंगेजों ने रियासतों के प्रति अपनी नीति में बदलाव करना प्रारम्भ कर दिया। 1813 से 1858 तक की नीति को वार्नर ने 'अधीनस्थ अलगाव' की नीति से संबोधित किया। इस नीति के तहत अंग्रेज कम्पनी ने सब भारतीय रियासतों को बाध्य किया कि वे अंग्रेजों के प्रभुत्व को स्वीकार करे। लार्ड हेस्टिंग्स 1813 से 1823 ई0 तक भारत में गवर्नर जनरल था। उसने मध्य भारत की 145, कठियावाड़ की 145 और राजपूताना की 20 रियासतों का सहायक संधियों द्वारा अपने संरक्षण में ले लिया।[15]

'अधीनस्थ संघ की नीति जो 1858 ई0 से 1919 तक था के अंतर्गत यह नीति अपनाई गई कि भारतीय रियासतों के साथ संबंध अच्छे बनाए जाए ताकि ये समय पर काम आ सके। अंग्रेजों ने भारतीय रियासतों को अपना हिस्सेदार बनाया ताकि वे उनकी हर प्रकार से समय पर सहायता कर सके। भारतीय रियासतों को सनद देने का निश्चय किया गया और 160 सनदें भी दी गई।[16]

भारतीय राजाओं को आश्वासन दिया गया कि उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचायी जाएगी जबतक वे सम्राट के प्रति आज्ञाकारी है तथा संधियों अनुदानों तथा निश्चयों के शर्तो के प्रति आज्ञाकारी है जिनके द्वारा ब्रिटिश सरकार के साथ उनका लागू होना प्रभावित होता है। सनदों की स्वीकृति से पूर्व लॉर्ड कैनिंग ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश सरकार देशी राज्यों द्वारा अनुचित अवस्था के पग उठाये जाने और अराजकता तथा दंगो की अवस्था में समुचित कार्यवाही करने से नहीं चुकेगी। यदि किसी देशी रियासतों के अस्थाई प्रबंध को भी सरकार द्वारा संभालने की आवश्यकता प्रतीत हुई तो सरकार वैसा करने से भी नहीं चूकेगी। न ही आश्वासन से हमारा अधिकार समाप्त हो जाएगा जिसके द्वारा हम किसी रियासत पर समझौतों सथा संधियों का उल्लंघन करने यथा आज्ञा न मानने की अवस्था में जुर्माने कर सके या जब्त कर लें।[17]

प्रो0 डाडविल ने लिखा है कि ''इन सनदों का यह महत्व था कि रियासतों को भारतीय पद्धति का अगिनत अंग समझ लिया गया।'' भारतीय नरेशों ने अंग्रेजों के प्रभुत्व को मान लिया और उनकी अधीनता भी मान ली। ब्रिटिश सरकार ने 1858 के बाद अपने ऊपर एक प्रकार का प्रतिबंध लगा दिया और कब्जा करने की नीति को अपने इच्छा से त्याग दिया। ब्रिटिश सरकार को यह अनुभव हो गया कि भारतीय राज्यों में कुशासन की समस्या का समाधान कब्जा करने की नीति नहीं है। कब्जा करने के कई प्रकार के बुरे परिणाम थे। भारतीय रियासतों में अच्छी

सरकार, सुरक्षा, कानून और व्यवस्था स्थापित करना ब्रिटिश सरकार ने अपना नैतिक कर्तव्य मान लिया। धीरे–धीरे ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से हस्तेक्षप करने की प्रथा का जन्म हुआ। ब्रिटिश रेजिडेंट के बड़े नियंत्रण के कारण भारतीय राज्यों के आंतरिक मामलों में काफी हस्तक्षेप हुआ रियासतों के महत्वपूर्ण अफसरों की नियुक्ति के लिए ब्रिटिश सरकार के पोलिस टिकल डिपार्टमेंट से अनुमति लेनी पड़ती थी।[18] जब किसी रियासत का शासक नाबालिग होता था तो ब्रिटिश सरकार एक रेजिडेन्ट नियुक्त करती थी और राज्य की सारी बागडोर उसके हाथ में होती थी। उस दौरान ब्रिटिश सरकार जो सुधार रियासत में करना चाहती थी कर लेती थी। यहाँ तक कि अगर भारतीय रियासतों के लोगों को भारत के बाहर जाने के लिए भारत सरकार से अनुमति–पत्र की आवश्यकता थी जिसके लिए उन्हें प्रार्थना करनी पड़ती थी। ब्रिटिश सरकार का रियासतों में शस्त्रों और अन्य शस्त्र–सामग्री के लाइसेंसों के संबंध में पूरा नियंत्रण था। 1926 में पटियाला रियासत ने ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना कि वह 25 पिस्तलों की स्वीकृति दे। ब्रिटिश सरकार का उत्तर था कि पटियाला के पास पहले से ही 48 पिस्तौलें थी और 25 पिस्तलों की आवश्यकता क्यों हुई।[19] ब्रिटिश सरकार राजाओं को गद्दी से उतारने और कुछ परिस्थितयों में गद्दी छोड़ने के लिए विवश करने का अधिकार रखती थी। ऐसे अधिकारों का प्रयोग बड़ौदा और मणिपुर के रियासतों में किया गया। 1874 ई0 में ब्रिटिश सरकार ने एक कमीशन की नियुक्ति की। बड़ौदा नरेश ने विरोध किया। कमीशन के निर्णयों के अनुसार ब्रिटिश भारत सरकार ने बड़ौदा नरेश को चेतावनी दी कि कुछ निश्चित सुधार 18 मास के अन्दर करे नहीं तो उसे गद्दी से उतार दिया जाएगा उसी समय वायसराय को खबर मिली कि बड़ौदा नरेश ने ब्रिटिश रेजिडेंट को जहर देने की कोशिश किया है। इसका परिणाम यह हुआ कि कमीशन के जाँच के फलस्वरूप बड़ौदा नरेश को गद्दी से उतार दिया गया और उसी के वंश के अन्य सदस्य को सिंहासन पर बैठा दिया गया।[20] 1829 में पटियाला रियासत ने रेलवे के विस्तार के लिए ब्रिटिश सरकार के साथ समझौता करने मे एतराज किया परन्तु भारत सरकार ने उसे रद्द कर दिया भारत सरकार ने अपने प्रभुत्व के संबंध में कई अवसरों पर बहुत बल दिया। बहादुर शाह द्वितीय जो मुगलों का अंतिम बादशाह था, 1876 में मृत्यु हो गई और महारानी विक्टोरिया ने कैसर ए हिन्द की उपाधि धारण की।[21]

नई नीति के तहत भारतीय रियासतों के पास वही शक्ति होगी जिसकी अनुमति ब्रिटिश ताज देगा। भारत में केवल ताज की शक्ति ही निरंकुश और अविभाज्य थी।[22] हैदराबाद के निजाम हमेशा अपने लिए विशेष स्थिति का दावा करते थे। 1926 में लार्ड रीडिंग ने इस काल्पित धारणा को एक शब्दों में खण्डित किया ''भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का प्रभुत्व सर्वोच्च है। इस लिए भारत रियासत का कोई भी शासक ब्रिटिश सरकार के साथ यथोचित रूप से समान स्तर से बातचीत करने में न्याय संगत नहीं।'' लार्ड कर्जन ने 1 जनवरी 1903 को एक भव्य राज्यरोहण दरबार का आयोजन किया जिसका प्रयोजन 'एशियाई भावनाओं और देशी संभ्रांत वर्ग की परंपरा' की ओर ध्यान आकर्षित करना था। उसका यह पक्का विश्वास था। इस दरबार से नरेश बहुत प्रभावित हुए थे और सामाज्य के स्तम्भ और भागीदार के रूप में अपनी सम्मान पूर्ण स्थिति पर गर्व की भावता लेकर लौटे थे।[23] कर्जन का विश्वास था कि नरेशों को सीमा से अधिक शान–ए–शौकत दिखाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। कूच, बिहार, कपूरथला और नामा के नरेशों द्वारा शाही ताज का प्रयोग किए जाने पर उसने भारी अपत्ति किया।[24] इसी प्रकार उसने पटियाला और पडुकोट्टई के महाराजाओं के लिए राष्ट्रीय धुन बजाए जाने का और बड़ौदा, कच्छ, मणिपुर तथा त्रावणकोर के नरेशों का शाही परिवार और सिंहासन'' जैसे शब्दों का प्रयोग किए जाने का विरोध किया। कर्जन बरौदा के गायकपाड़ और पडुकोट्टई के महाराज से वह इस कारण अप्रसन्न रहता था, क्योंकि इन राज्यों के नरेश अधिकांस समय विदेश यात्राओं में व्यतीत करते थे।[26]

कर्जन काल में राज्यों के अंदरूनी मामलों में ब्रिटिश हस्तक्षेप अपनी चरम सीमा पर महुँच गया। उसके वायसराय रहने की अवधि के दौरान, कम से कम पन्द्रह नरेशों को या तो गद्दी छोड़नी परी थी या कुछ समय के लिए सत्ता के अधिकार से वंचित होना पड़ा था।[27]

लार्ड मिंटो के वायसराय रहने क काल में सर्वोच्च सत्ता और देशी राज्यों के बीच संबंधों ने एक नया मोड़ लिया। कांग्रेस के उद्देश्यों के विपरीत किसी प्रतिभार की संभावना की

खोज में मिंटो ने महसूस किया कि बंगाल के विभाजन के बाद उग्ररूप धारण करने वाली राष्ट्रवादी शक्तियों का मुकाबला देशी नरेश कर सकते है। हारकोर्ट बटलर 1908 में विदेश सचिव बना। वह चाहता था कि उन्हें अंग्रेजों के पक्ष में लाया जाय ताकि वो ब्रिटिश विराधी चुनौती का मुकाबला करने में सहायता दे सके जो भारतीय राजनीति का एक महत्वपूर्ण तत्व बन गई थी। इस प्रस्ताव के परिणाम स्वरूप देशी राज्यों के प्रति अहस्तक्षेप की नई नीति का सूत्रपात हुआ। कर्जन की आक्रमण और तानाशाही नीति का परित्याग कर दिया गया। मिंटो ने इस नीति की रूपरेखा नवम्बर 1909 में उदयपुर मे अपने भाषण में स्पष्ट किया। उसने कहा कि अंग्रेज इस बात के विरूद्ध थे कि ब्रिटिश प्रशासनिक तरीके अपनाने के लिए नरेशों पर सिी प्रकार का दबाव डाला जाय। इसकी अपेक्षा वह यह चाहता था कि सुधारों का कार्य स्वयं नरेश ही शरू करे। राजनीतिक अधिकारियों को यह हिदायत दी गई कि वह नरेशों एवं असकी प्रजा के बीच किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें। अत्यधिक कुप्रशासन होने की स्थिति में ही हस्तक्षेप की बात सोची जा सकती है। इस प्रकार नरेशों को पर्याप्त स्वायत्ता दी गई ताकि वह ब्रिटिश भारत में राष्ट्रवाद के विरूद्ध चल रहे संघर्ष में निष्ठापूर्वक और स्वेच्छा से सहयोग करें।[28]

नई नीति के अन्तर्गत दी गई स्वतंत्रता से प्रभावित होकर कुछ नरेशों ने पूर्ण आंतरिक स्वतंत्रता के दावे पेश किए जो सर्वोच्च सत्ता के विशेषाधिकार के विरूद्ध थे। वे सर्वोच्चता की ऐसी निश्चित परिभाषा किए जाने की बराबर माँग करने लगे जो अहस्तक्षेप के सिद्धांत के अनुरूप हो। नरेशों के नाराजगी के बावजूद सर्वोच्च सत्ता सर्वोच्च ही बनी रही और सर्वोच्चता उतनी ही अस्पष्ट और अपरिभाषित बनी रही जितनी पहले। 8 फरवरी 1921 ई0 को नरेन्द्र मंडल के उद्घाटन के बाद से यह स्पष्ट हो गया कि नरेशों के विलगता के दिन गुजर चुके थे। अनेक महत्वपूर्ण नरेश उस स्वतंत्रता का पूरा लाभ उठाने लगे जो उन्हें अहस्तक्षेप की नीति से मिले थे।

इस प्रकार जहाँ संपूर्ण ब्रिटिश भारत लोकतंत्र के मार्ग पर अग्रसर हाने लगा, वहाँ अधिकांश नरेश अपना निरंकुश शासन चलाते रहे और ब्रिटिश भारत में घटित होने वाले घटना चक्र की ओर से अपनी आँख मूँद रहे। अहस्तक्षेप नीति का परिणाम उदयपुर तथा अलवर में स्पष्ट रूप से सामने आए। 1921 ई0 में उदयपुर में कृषि क्षेत्र में एक गंभीर संकट पैदा हो गया। सताए गए कृषकों ने एक उग्र आंदोलन बिजौलिया सत्याग्रह शुरू किया जो उस समय ब्रिटिश भारत में चल रहे आन्दोलन जैसा ही था। इसी प्रकार का एक आंदोलन अलवर में भी हुआ। जिसमें कृषकों ने बेमिसाल अत्याचार, यातना और दुर्दशा के विरूद्ध विद्रोह किया। इस बुरे हाल के लिए नरेश के साथ–साथ अहस्तक्षेप नीति भी जिम्मेदार थी।[29]

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का ब्रिटिश सरकार और भारतीय रियासतों पर प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीयता के बढते हुए तूफान ने ब्रिटिश सरकार को व्याकुल कर दिया। उन्हें ऐसा लगा भारतीय नरेश राष्ट्रीयता के संघर्ष में ब्रिटिश सरकार के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकते है जैसा कि 1857 के विद्रोह के समय हुआ था। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान के लिए भी भारतीय रियासतों की सेनाओं का प्रयोग किया जा सकता था। रियासती सेनाएँ भली प्रकार से प्रशिक्षित तथा अनु शासित थी। बिना खर्च किए ब्रिटिश सरकार उनका प्रयोग कर सकती थी। भारतीय राजाओ ने आंतकवादियों का दमन करने में ब्रिटिश सरकार की सहायता की। लार्ड हार्डिंग ने भारतीय शासकों को ब्रिटिश सम्राज्य के महान कार्य में ''सहायक और साथी'' कहा और उनकी प्रशंसा भी की।[30]

प्रथम विश्वयुद्ध प्रारंभ होने पर ब्रिटिश भारत और भारतीय राज्यों के रास्ते अलग–अलग होने लगे। अगस्त 1917 की घोषणा के अनुसार ब्रिटिश सरकार भारत में उत्तरदायी संस्थाओं के विकास तथा अन्त में ब्रिटिश भारत को स्वशासन का अधिकार देने के लिए वचनबद्ध हो गई परंतु नरेशों ने अपना आदर्श वैसे ही रखा। वे भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस से भय खाते थे क्योंकि काँग्रेस प्रजातंत्र में विश्वास करती थी और राजा लोग अपनी निरंकुशता को कायम रखना चाहते थे। दो प्रकार के भारतों के सह–अस्तित्त्व का, जिसमें से एक में निर्वाचन पर आधारित लोकतंत्र की प्रगति हो रही थी, दूसरे में निरंकुश तंत्र प्रचालित था। अंत होना अवश्यंभावी था। 1847 से बहुत पहले ही भारत के देशी रियासतों का समय बीत चुका था, उनका कोई भविष्य नहीं रह गया था और विनाश ही उनकी नियति बन गई थी।[31]

जिस काल की हम चर्चा कर रहे है उस काल में भारतीय राज्यों के प्रति अंग्रेजों की नीति शुरू से ही दोषपूर्ण थी। सर्वपल्ली गोपाल का कहना है कि वह ऐसी नीति थी जिसमें कोई संभावना नहीं थी। राज को ऐसे लोगों की निष्ठा से मजबूत करने के प्रयत्न का विफल होना अवश्यंभावी था जो गुजरे जमाने के लोग थे। भविष्य उन लोगों के हाथों में था जो सामंतवादी नहीं थे, विशेषकर जो मध्य वर्ग के थे। यह गलत अनुमान गलत मान्यता पर आधारित दृष्टिहीन नीति थी। मरणासन्न रियासती व्यवस्था जिसकी वास्तविक सत्ता छिन चुकी थी, राष्ट्रवाद और लोकतंत्र के बढ़ते हुए तूफान को रोकने में पूर्णतः अक्षम थी।

संदर्भ सूची :–

1. विपिन चन्द्र – भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, 1994, दिल्ली पेज– 228
2. आर0 पी0 भार्गव, द चैम्बर ऑफ प्रिंसेस, 1992, दिल्ली, पृ0– 313
3. तदैव, पृष्ठ सं0 – 313
4. होम पोलिटिकल रिपोर्ट्स, फाइल सं 5/5/29, राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली
5. बी0 एन0 पाण्डे, ए सेन्टेनरी, हिस्ट्र ऑफ इन्डियन नेशनल कॉंग्रेस, लंदन, पृष्ठ सं0– 75–76
6. राम लखन शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास 2002, दिल्ली, पृष्ठ सं0 – 399
7. तदैव, पृष्ठ सं0 – 399–40
8. ली वार्नर, द नेटिव स्टेट ऑफ इन्डिया, 1910 लंदन, मैकमिलन प्र0 पेज – 58, अध्याय 111
9. ली वार्नर, द नेटिव स्टेट ऑफ इन्डिया, 1910 लंदन, पृ0 – 96–97
10. तदैव, पृष्ठ सं0 – 157–158
11. राम लखन शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास 2002, दिल्ली, पृष्ठ सं0– 70–71
12. ली वार्नर, द नेटिव स्टेट ऑफ इन्डिया, 1910 लंदन, पृ0– 58
13. एम0 के शर्मा, भारतीय राष्ट्रय कॉंग्रेस का इतिहास, दिल्ली, 1989, पृ0– 59
14. के0 एम0 पन्नीकर, ब्रिटिश पौलिसी टु वर्डस इण्डियन स्टेट्स 1929, पृ0– 99
15. एस0 आर0 देसाई, पूर्वोक्ति, पृ0– 242
16. शेखर बंदोपाध्याय, पूर्वोक्त पृ0– 121
17. एरिक स्टोक, द पीसॉप्ट एण्ड दी राज, पूर्वोक्त पृ0– 126–129
18. जी0 एन0 सिंह, इण्डियन स्टेट एण्ड ब्रिटिश इंडिया, पृ0– 167–170
19. मुखर्जी एण्ड रामास्वामी, रिआर्गनाइजेशन ऑफ इंडियन स्टेट, पृ0– 84
20. शैलेन्द्र नाथ सेन, आंग्ला– मराठा संबंध, पृ0– 76
21. आर0 सी0 मजूमदार ब्रिटिश पैरामउण्टसी एण्ड इंडियन रिनेशा, बम्बई, 1974 पृ0– 103–104
22. डब्लू–डब्लू हंटर, पूर्वोक्त, पृ0– 91
23. राम लखन शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास 2002, दिल्ली, पृष्ठ सं0– 102
24. राम लखन शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास 2002, दिल्ली, पृष्ठ सं0– 419
25. राम लखन शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास, दिल्ली, पृष्ठ सं0– 458
26. तदैव, पृष्ठ सं0 – 492
27. होम पोलिटिकल रिपोर्ट्स, फाइल सं 5/5/30, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली
28. एच0 एन0 डॉडवेल कॉम्ब्रिज हिस्ट्र ऑफ इंडिया वाल्यूम v पृ0– 202–203
29. बरबरा रामूसैक, पूर्वोक्त, पृ0– 103
30. तदैव, पृष्ठ सं0 – 104
31. इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, vol. iv, 1907 पृ0– 92–103